दर्द-ए-दिल..

जिन्होंने हमें पाला, आज वे सहारे के लिए तरसते हैं

बुढ़ापे का दर्द और बदलते रिश्ते

मानव जीवन का सबसे संवेदनशील चरण बुढ़ापा होता है। बचपन में माता-पिता बच्चों की उंगली पकड़कर उन्हें चलना सिखाते हैं, उनकी छोटी-छोटी जरूरतों का ध्यान रखते हैं और अपनी खुशियों का त्याग करके उनका भविष्य संवारते हैं। लेकिन जब वही माता-पिता बुढ़ापे में सहारे, प्यार और अपनेपन की उम्मीद करते हैं, तो कई बार उन्हें अकेलेपन और उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। यह हमारे समाज की एक ऐसी वास्तविकता है, जिस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

माता-पिता का प्यार दुनिया के सबसे निस्वार्थ रिश्तों में से एक है। वे अपने बच्चों की खुशी के लिए अपनी इच्छाओं को पीछे छोड़ देते हैं। बच्चे की बीमारी के समय माँ रात-रात भर जागती है और पिता अपनी मेहनत की कमाई उसकी पढ़ाई, परिवरिश और भविष्य पर खर्च कर देता है। वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा, संस्कार और जीवन में सफलता दिलाने के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। उनकी सबसे बड़ी खुशी यही होती है कि उनके बच्चे खुशहाल और सफल जीवन व्यतीत करें।

लेकिन समय के साथ पारिवारिक व्यवस्था में बड़े बदलाव आए हैं। संयुक्त परिवारों की जगह छोटे परिवारों ने ले ली है। नौकरी, व्यवसाय, विदेशों में बसने और निजी जीवन की जिम्मेदारियों के कारण अनेक बच्चे अपने माता-पिता से दूर रहने लगे हैं। दूरी अपने आप में कोई गलती नहीं है, क्योंकि रोजगार और बेहतर भविष्य के लिए घर से दूर जाना कई बार आवश्यक होता है। समस्या तब पैदा होती है, जब दूरी के साथ भावनात्मक जुड़ाव और जिम्मेदारी भी समाप्त होने लगती है।

आज अनेक बुजुर्ग अपने ही घरों में अकेले जीवन बिता रहे हैं। उनके पास रहने के लिए घर, खाने के लिए भोजन और दवाइयाँ खरीदने के लिए पैसे तो हो सकते हैं, लेकिन बातचीत करने के लिए कोई अपना नहीं होता। उन्हें महँगी उपहारों से अधिक बच्चों के कुछ प्यार भरे शब्दों और थोड़े-से समय की आवश्यकता होती है। कई बार वे केवल इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कोई उनके पास बैठे, उनकी पुरानी बातें सुने और उनका हालचाल पूछे।

वृद्धाश्रमों की बढ़ती आवश्यकता भी हमारे सामने अनेक सामाजिक प्रश्न खड़े करती है। यह मानना उचित नहीं होगा कि प्रत्येक बुजुर्ग बच्चों की उपेक्षा के कारण ही वृद्धाश्रम में रहता है। कुछ बुजुर्ग अपनी इच्छा से, सुरक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं या अकेलेपन से बचने के लिए भी ऐसी संस्थाओं का चुनाव करते हैं। कई बार बच्चे विदेशों में रहते हैं या पारिवारिक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि घर पर बुजुर्गों की देखभाल संभव नहीं रहती। लेकिन जब माता-पिता को जानबूझकर अनदेखा किया जाता है या उन्हें बोझ समझा जाता है, तो यह अत्यंत दुखद स्थिति होती है।

बुढ़ापे में शारीरिक कमजोरी के साथ-साथ भावनात्मक सहारे की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। उम्र बढ़ने के साथ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ, याददाश्त की कमजोरी, सुनने और देखने में कठिनाई तथा चलने-फिरने में परेशानी हो सकती है। ऐसे समय में बुजुर्गों को धैर्य, सम्मान और सहयोग की आवश्यकता होती है। उनकी बार-बार पूछी जाने वाली बातों या पुरानी यादों को बेकार समझने के बजाय उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

इस समस्या का एक अन्य पहलू यह है कि कई बार बुजुर्गों को परिवार के निर्णयों में शामिल नहीं किया जाता। उनके अनुभवों और विचारों को पुरानी सोच कहकर नकार दिया जाता है। जब वे अपने ही घर में महत्वहीन महसूस करने लगते हैं, तो उनका आत्मविश्वास और जीवन के प्रति उत्साह कम हो सकता है। बुजुर्गों को केवल देखभाल की वस्तु नहीं, बल्कि परिवार के सम्मानित और अनुभवी सदस्य के रूप में देखा जाना चाहिए।

इस समस्या का समाधान केवल बच्चों को दोषी ठहराने से नहीं हो सकता। परिवारों में आपसी समझ, संवाद और जिम्मेदारी की भावना विकसित करना आवश्यक है। बच्चों को छोटी उम्र से ही बुजुर्गों का सम्मान करना सिखाया जाना चाहिए। विद्यालयों में नैतिक शिक्षा, पारिवारिक मूल्यों और पीढ़ियों के बीच आपसी जुड़ाव को प्रोत्साहित करना चाहिए। सामाजिक संस्थाओं और सरकार को भी बुजुर्गों के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं, सुरक्षा, मनोरंजन और सहायता की योजनाओं को मजबूत करना चाहिए।

बच्चों को यह समझना चाहिए कि माता-पिता की सेवा केवल पैसे भेजने या दवाइयों की व्यवस्था करने तक सीमित नहीं है। उनसे बातचीत करना, उनकी भावनाओं को समझना, समय-समय पर उनसे मिलना और उन्हें परिवार का महत्वपूर्ण हिस्सा महसूस करवाना भी बहुत जरूरी है। यदि बच्चे दूर रहते हैं, तो नियमित फोन कॉल, वीडियो कॉल और मिलने की योजना के माध्यम से भी अपना प्यार और जिम्मेदारी निभा सकते हैं।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि आज के बच्चे कल के बुजुर्ग होंगे। यदि हम अपने माता-पिता के साथ सम्मान और प्रेम से व्यवहार करेंगे, तो आने वाली पीढ़ी के सामने भी एक अच्छी मिसाल प्रस्तुत करेंगे। परिवार केवल एक साथ रहने का नाम नहीं है, बल्कि एक-दूसरे की भावनाओं, आवश्यकताओं और कठिनाइयों को समझने का नाम है।

अंत में, हमें स्वयं से एक प्रश्न पूछना चाहिए: जिन माता-पिता ने हमारी उंगली पकड़कर हमें चलना सिखाया, क्या बुढ़ापे में उनका हाथ थामना हमारी जिम्मेदारी नहीं है? माता-पिता को बुढ़ापे में सबसे अधिक आवश्यकता महँगी उपहारों या बड़े घरों की नहीं, बल्कि प्यार, सम्मान, समय और अपनेपन की होती है। उनकी आँखों में प्रतीक्षा की जगह मुस्कान लाना ही सच्ची मानवता है। जिस घर में बुजुर्गों का सम्मान होता है, वहाँ संस्कार जीवित रहते हैं। माता-पिता की सेवा कोई एहसान नहीं, बल्कि मानवीय कर्तव्य और हमारे जीवन की सबसे बड़ी नैतिक जिम्मेदारी है।



डॉ. विजय गर्ग
सेवानिवृत्त प्राचार्य,
शिक्षाविद् एवं प्रख्यात वैज्ञानिक
स्ट्रीट कौर चंद,
एम.एच.आर. मलोट,
पंजाब - 152107

सरस्वती, संस्कार और सियासतः क्या 'वोट बैंक' की चौसर पर फिर बंटेगा समाज?

बौद्धिक वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका और राष्ट्रहित के संदर्भ में वर्तमान राजनीतिक विमर्श का एक गंभीर विश्लेषण

भारतीय राजनीति की तासीर बड़ी विचित्र है। यहां चुनाव की आहट होते ही महापुरुषों के आदर्श, पुरखों की विरासत और सामाजिक संस्कारों की परिभाषाएं भी सियासी नफा-नुकसान के तराजू पर तौली जाने लगती हैं। हाल ही में बिहार के दरभंगा में जन सुराज पार्टी के संस्थापक प्रशांत किशोर द्वारा ब्राह्मण समाज के एक मंच से दिया गया बयान इसी राजनीतिक विमर्श का नया केंद्र बना है। उन्होंने ब्राह्मणों को 'सरस्वती और संस्कार' की याद दिलाते हुए उन्हें भाजपा से दूरी बनाने और एक खास वोट बैंक को साधने की जो नसीहत दी है, उसने एक गंभीर वैचारिक बहस को जन्म दे दिया है। सवाल यह है कि क्या यह बयान वाकई समाज के बौद्धिक उत्थान की चिंता है, या फिर यह सदियों से चली आ रही सामाजिक समरसता को तोड़कर नया चुनावी समीकरण गढ़ने की एक सोची-समझी राजनीतिक कवायद है?

सरस्वती और संस्कार की वास्तविक परिभाषा

प्रशांत किशोर ने अपने संबोधन में कहा कि ब्राह्मणों की असली ताकत 'मां सरस्वती' (ज्ञान) और 'संस्कार' हैं, न कि बाहुबल या राजनीतिक झंडा। यह निर्विवाद सत्य है कि भारतीय सनातन परंपरा में ब्राह्मण की पहचान त्याग, तपस्या, ज्ञान और 'वसुधैव कुटुम्बकम' के भाव से रही है। लेकिन इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राष्ट्र और धर्म पर संकट आया, तब-तब इसी समाज ने शास्त्र के साथ-साथ शस्त्र भी उठाया। महर्षि दधीचि के आत्मत्याग से लेकर 1857 की क्रांति में मंगल पांडे के बलिदान तक, भारतीय इतिहास में ब्राह्मण समाज कभी केवल 'स्वार्थ या सत्ता के गणित' तक सीमित नहीं रहा। उसने सदैव 'राष्ट्र प्रथम' के सिद्धांत को सर्वोपरि रखा है। ऐसे में, उनके पारंपरिक संस्कारों को केवल चुनावी जीत-हार के चश्मे से देखना उस महान विरासत को संकुचित करने जैसा है।

'पुराना समीकरण' बनाम 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद'

भाषण के दौरान यह तर्क दिया गया कि पुराने दौर में ब्राह्मण समाज एक विशेष सामाजिक समीकरण के तहत 20 प्रतिशत मुस्लिम वोटों के सहारे सत्ता के शीर्ष पर रहता था। किंतु, यह विश्लेषण इतिहास के एक बड़े सच को अनदेखा करता है। वह दौर तुष्टिकरण की राजनीति का था, जहां समाज को जातियों और मजहबों के खांचे में बांटकर सत्ता हासिल की जाती थी। पिछले एक दशक में देश की राजनीति में एक बड़ा वैचारिक परिवर्तन आया है। आज का मतदाता—चाहे वह किसी भी वर्ग का हो—केवल जातिगत समीकरणों के बजाय 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद', 'एकात्म मानववाद' और 'सबका साथ, सबका विकास' की नीति को प्राथमिकता दे रहा है। ब्राह्मण समाज का किसी राष्ट्रवादी विचारधारा से जुड़ना किसी वर्ग के प्रति द्वेष नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण के प्रति उसकी स्वाभाविक वैचारिक प्रतिबद्धता का परिणाम है।

सोशल मीडिया और मर्यादा का प्रश्न

प्रशांत किशोर ने सोशल मीडिया पर की जाने वाली अमर्यादित टिप्पणियों और गाली-गलौज पर जो चिंता जताई, वह निश्चित रूप से विचारणीय है। भारतीय संस्कृति और विशेषकर 'संस्कार' शब्द किसी भी वर्ग या व्यक्ति के प्रति कटुता या अभद्र भाषा का समर्थन नहीं करते। मर्यादा, संयम और संवाद ही हमारी असली पहचान हैं। लेकिन, कुछ मुट्ठी भर सोशल मीडिया यूजर्स के व्यवहार के आधार पर पूरे समाज को कटघरे में खड़ा करना या यह कहना कि वे 'दूसरों को खाने नहीं दें', न केवल अनुचित है बल्कि सामाजिक वैमनस्य को बढ़ावा देने वाला भी है।

समाज जोड़ने की पहल या तोड़ने की साजिश?

राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि बिहार की राजनीति में अपनी जमीन तलाश रहे नए दलों के लिए पारंपरिक वोट बैंकों में सेंध लगाना एक बड़ी चुनौती है। जब कोई राजनेता किसी एक वर्ग को यह समझाता है कि 'तुम्हें अमुक दल का झंडा छोड़ देना चाहिए क्योंकि इससे तुम्हारा चुनावी नुकसान हो रहा है', तो इसके पीछे समाज सुधार से अधिक 'वोटों के ध्रुवीकरण' की मंशा स्पष्ट नजर आती है। यह वही पुरानी 'फूट डालो और राज करो' की नीति का आधुनिक रूप है, जहां समाज के अलग-अलग अंगों को यह एहसास कराया जाता है कि उनका हित राष्ट्र के सामूहिक हित से अलग है। आज भारत एक ऐसे ऐतिहासिक मोड़ पर खड़ा है, जहां आंतरिक एकता और सामाजिक समरसता सबसे बड़ी आवश्यकता है। किसी भी समाज की सार्थकता इस बात में नहीं है कि वह किस राजनीतिक दल के साथ खड़ा होकर सत्ता का सुख भोगता है, बल्कि इस बात में है कि वह राष्ट्र को सशक्त बनाने में क्या योगदान देता है। ब्राह्मण समाज हो या देश का कोई भी अन्य वर्ग—उसकी असली शक्ति 'सरस्वती' (विवेक) और 'संस्कार' (राष्ट्रधर्म) ही हैं। इसी विवेक का उपयोग करते हुए समाज को किसी भी तात्कालिक राजनीतिक प्रलोभन या भटकाव से बचकर राष्ट्रहित के मार्ग पर अडिग रहना होगा।

चाणक्य से मालवीय तक : राष्ट्र निर्माण की अमर गाथा

भारतीय इतिहास में बौद्धिक वर्ग (ब्राह्मण समाज) ने कभी भी व्यक्तिगत सत्ता या संकीर्ण वोट बैंक के लिए समझौता नहीं किया। इसके कुछ कालजयी उदाहरण:

- आचार्य चाणक्य: जिन्होंने व्यक्तिगत अपमान के बजाय अखंड भारत के निर्माण को चुना और एक साधारण बालक चंद्रगुप्त को सम्राट बनाकर विदेशी आक्रांताओं को खदेड़ा।
- आदि शंकराचार्य: जिन्होंने मात्र 32 वर्ष की आयु में पूरे देश का पैदल भ्रमण कर भारत को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक एकता के सूत्र में पिरोया।



मंगल पांडे एवं चंद्रशेखर आजाद: जिन्होंने गुलामी की बेड़ियां तोड़ने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी और क्रांति की मशाल जलाई।

महामना मदन मोहन मालवीय: जिन्होंने 'सरस्वती' की वास्तविक उपासना करते हुए काशी हिंदू विश्वविद्यालय (ज्ञान) की स्थापना की, ताकि आने वाली पीढ़ियां ज्ञान और संस्कार से युक्त होकर राष्ट्र सेवा कर सकें।

राजेश कुमरावत 'सार्थक'

भारतीय प्रतिभा की खोज से खिलाड़ियों को मिलेगी नई सुरक्षा

इनमें सबसे गंभीर खतरा सिर और मस्तिष्क पर लगने वाली चोटों का है। खेल के दौरान सिर पर लगने वाली चोट कभी-कभी तत्काल दिखाई नहीं देती, लेकिन उसका प्रभाव खिलाड़ी के स्वास्थ्य और भविष्य पर लंबे समय तक पड़ सकता है। ऐसे में यदि समय रहते चोट की पहचान हो जाए तो अनेक गंभीर परिस्थितियों से बचा जा सकता है। इसी दिशा में भारतीय मूल की छात्रा राधिका सरन और उनकी टीम का आविष्कार एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सामने आया है।

खेल केवल मनोरंजन या प्रतिस्पर्धा का माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे अनुशासन, साहस, आत्मविश्वास और शारीरिक क्षमता के विकास का भी महत्वपूर्ण आधार हैं। दुनिया भर में करोड़ों लोग विभिन्न खेलों से जुड़े हैं। क्रिकेट, फुटबॉल, हॉकी, मुक्केबाजी, कुश्ती और अन्य संपर्क वाले खेलों में खिलाड़ी अपनी पूरी क्षमता के साथ प्रदर्शन करते हैं। लेकिन खेलों की चमक-दमक के पीछे कई ऐसे खतरे भी छिपे होते हैं, जिनकी ओर अक्सर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता।



हार्वर्ड विश्वविद्यालय से जुड़ी राधिका सरन और उनकी दो सहयोगियों क्लियो पोंटोने तथा सोफिया डेविटो ने खिलाड़ियों में मस्तिष्क की संभावित चोट की पहचान के लिए एक कम लागत वाला उपकरण विकसित किया है। उनकी इस पहल को वर्ष 2026 के प्रतिष्ठित जेम्स डायसन वैश्विक पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान केवल एक तकनीकी आविष्कार की सफलता नहीं है, बल्कि उस मानवीय सोच का भी सम्मान है, जिसमें विज्ञान और अनुसंधान को सीधे लोगों के जीवन की सुरक्षा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इस उपलब्धि ने भारतीय मूल की युवा प्रतिभा को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई है।

इस उपकरण का नाम रम्बल रिम्स रखा गया है। यह एक हल्का उपकरण है, जिसे सिर पर पहनकर आँखों की गतिविधियों का परीक्षण किया जा सकता है। इसमें अवस्था कैमरों का उपयोग किया गया है, जो आँखों की गति और उनके व्यवहार पर नजर रखते हैं। परीक्षण के दौरान खिलाड़ी को कुछ समय तक सामने दिखाई देने वाले लक्ष्य को देखते हुए उसकी गतिविधियों का अनुसरण करना होता है। इसके बाद उपकरण आँखों की गति, ध्यान केंद्रित करने की क्षमता और प्रतिक्रिया से जुड़े संकेतों का विश्लेषण करता है। लगभग दो से तीन मिनट में परीक्षण के परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। इन परिणामों के आधार पर प्रशिक्षकों और चिकित्सा विशेषज्ञों को यह समझने में सहायता मिल सकती है कि खिलाड़ी में मस्तिष्क की चोट से जुड़े संभावित लक्षण मौजूद हैं या नहीं।

इस आविष्कार की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अपेक्षाकृत कम लागत है। सामान्यतः मस्तिष्क की चोट की जाँच के लिए विशेष चिकित्सा सुविधाओं और प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। छोटे खेल संस्थानों, विद्यालयों, ग्रामीण खेल केंद्रों और सीमित संसाधनों वाले क्षेत्रों में ऐसी सुविधाएँ हमेशा उपलब्ध नहीं होतीं। परिणामस्वरूप कई बार खिलाड़ी चोट लगने के बावजूद खेलते रहते हैं। उन्हें लगता है कि मामूली टक्कर या गिरने से कोई गंभीर नुकसान नहीं हुआ है। लेकिन मस्तिष्क की चोट के मामले में यह लापरवाही खतरनाक साबित हो सकती है। रम्बल रिम्स जैसे उपकरण भविष्य में ऐसी प्रारंभिक जाँच को अधिक सुलभ बनाने में सहायता कर सकते हैं। इसकी लागत 350 डॉलर से कम बताई गई है, जो अत्याधुनिक चिकित्सा परीक्षण उपकरणों की तुलना में इसे अपेक्षाकृत किफायती बनाती है।

खेलों में मस्तिष्क की चोट एक गंभीर स्वास्थ्य समस्या है। फुटबॉल में खिलाड़ियों के सिर का आपस में टकराना, क्रिकेट में गेंद लगना, मुक्केबाजी में लगातार प्रहार और कुश्ती में जमीन पर गिरना ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनमें मस्तिष्क प्रभावित हो सकता है। कई बार चोट के तुरंत बाद खिलाड़ी सामान्य दिखाई देता है, लेकिन कुछ समय बाद उसे सिरदर्द, चक्कर, उलझन, थकान, स्मरण शक्ति में कमी और ध्यान केंद्रित करने में परेशानी होने लगती है। ऐसी स्थिति को हल्के में लेना उचित नहीं है। विशेषकर बच्चों और किशोर खिलाड़ियों के मामले में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि उनका शरीर और मस्तिष्क अभी विकास की अवस्था में होता है।

इस आविष्कार की उपयोगिता केवल बड़े खेल आयोजनों तक सीमित नहीं है। विद्यालयों, महाविद्यालयों, खेल अकादमियों और स्थानीय खेल प्रतियोगिताओं में भी इसका उपयोग संभावित रूप से किया जा सकता है। यदि किसी खिलाड़ी को सिर पर चोट लगती है तो प्रशिक्षक प्रारंभिक परीक्षण के माध्यम से उसकी स्थिति का आकलन करने में सहायता प्राप्त कर सकते हैं। इससे समय रहते चिकित्सकीय जाँच कराने का निर्णय लेना आसान हो सकता है। हालाँकि यह समझना आवश्यक है कि ऐसा उपकरण चिकित्सक का विकल्प नहीं है। यह मस्तिष्क की चोट का अंतिम निदान नहीं करता, बल्कि संभावित समस्या की पहचान में सहायता देने वाला माध्यम है। चोट के संदेह की स्थिति में खिलाड़ी को चिकित्सकीय परीक्षण और विशेषज्ञ की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।

राधिका सरन और उनकी सहयोगियों की सफलता का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उन्होंने एक वास्तविक समस्या को समझकर उसके समाधान की दिशा में काम किया। आज विज्ञान और तकनीक का उद्देश्य केवल नई मशीनें बनाना या बाजार में अधिक महँगे उपकरण उपलब्ध कराना नहीं होना चाहिए। उसका वास्तविक उद्देश्य मनुष्य के जीवन को बेहतर, सुरक्षित और सुविधाजनक बनाना है। जब युवा शोधकर्ता समाज की किसी गंभीर समस्या को अपने अनुसंधान का विषय बनाते हैं, तब विज्ञान का मानवीय पक्ष सामने आता है। यही सोच किसी भी आविष्कार को विशेष बनाती है। इस उपलब्धि से भारत के युवाओं के लिए भी अनेक संदेश निकलते हैं। हमारे देश में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। छोटे कस्बों, गाँवों और सामान्य परिवारों से आने वाले अनेक विद्यार्थी विज्ञान, गणित, चिकित्सा और तकनीक के क्षेत्र में अपनी पहचान बना सकते हैं। आवश्यकता है उन्हें उचित शिक्षा, प्रयोगशालाओं, मार्गदर्शन और शोध के अवसर उपलब्ध कराने की। कई बार आर्थिक संसाधनों की कमी और अनुसंधान के लिए पर्याप्त सुविधाएँ न होने के कारण प्रतिभाशाली विद्यार्थी अपनी कल्पनाओं को वास्तविक रूप नहीं दे पाते। यदि विद्यालय स्तर से ही बच्चों में प्रश्न पूछने, प्रयोग करने और समस्याओं के समाधान खोजने की प्रवृत्ति विकसित की जाए तो भविष्य में देश को अनेक नए आविष्कारक मिल सकते हैं।

भारत में खेलों का विस्तार तेजी से हो रहा है। गाँवों और छोटे शहरों में भी बच्चे विभिन्न खेलों में अपना भविष्य तलाश रहे हैं। खेल अकादमियों और प्रशिक्षण केंद्रों की संख्या बढ़ रही है। ऐसे समय में खिलाड़ियों की सुरक्षा को भी उतना ही महत्व दिया जाना चाहिए जितना उनके प्रदर्शन और पदक जीतने को दिया जाता है। खेल संस्थानों में प्राथमिक चिकित्सा, प्रशिक्षित चिकित्सकर्मियों और चोट की पहचान से जुड़ी सुविधाएँ उपलब्ध कराना आवश्यक है। किसी खिलाड़ी की उपलब्धि तभी सार्थक है, जब उसके स्वास्थ्य और भविष्य की भी रक्षा हो।

आज के समय में तकनीक का उपयोग जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, संवेदक, आधुनिक चिकित्सा उपकरण और आँकड़ों के विश्लेषण ने स्वास्थ्य सेवाओं के स्वरूप को बदलना शुरू कर दिया है। लेकिन तकनीक की सफलता तभी मानी जाएगी, जब उसका लाभ समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे। यदि कम लागत वाले उपकरणों के माध्यम से दूरदराज के क्षेत्रों में भी खिलाड़ियों की प्रारंभिक स्वास्थ्य जाँच संभव हो सके तो यह खेल जगत के लिए बड़ी उपलब्धि होगी। इसके लिए आविष्कारों का वैज्ञानिक परीक्षण, उनकी विश्वसनीयता और उपयोग की सुरक्षा सुनिश्चित करना भी जरूरी है।

राधिका सरन और उनकी टीम को मिला वैश्विक सम्मान हमें यह सोचने का अवसर देता है कि युवा मस्तिष्क केवल अपने व्यक्तिगत भविष्य के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी मानवता के कल्याण के लिए भी काम कर सकते हैं। एक छोटी-सी समस्या को गंभीरता से समझने और उसके समाधान के लिए लगातार प्रयास करने से ऐसा आविष्कार जन्म ले सकता है, जो हजारों खिलाड़ियों का भविष्य सुरक्षित बनाने में सहायक हो। यह उपलब्धि उन सभी युवाओं के लिए प्रेरणा है, जो कुछ नया करने और समाज को बेहतर बनाने का सपना देखते हैं।



वास्तव में किसी देश की पहचान केवल उसकी आर्थिक समृद्धि, सैन्य शक्ति या खेलों में जीते गए पदकों से नहीं होती, बल्कि उसकी वैज्ञानिक सोच, शोध क्षमता और मानवीय संवेदनाओं से भी होती है। राधिका सरन और उनकी टीम का यह प्रयास इसी दिशा में एक सराहनीय कदम है। खेल के मैदान में जीत का महत्व अपनी जगह है, लेकिन खिलाड़ी का सुरक्षित जीवन उससे कहीं अधिक मूल्यवान है। यदि विज्ञान की सहायता से किसी खिलाड़ी को गंभीर चोट के दुष्परिणामों से बचाया जा सके तो इससे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है? भारतीय मूल की इस युवा प्रतिभा ने अपने आविष्कार के माध्यम से यही संदेश दिया है कि ज्ञान का सर्वोत्तम उपयोग मानव जीवन की रक्षा और समाज के कल्याण में ही निहित है।

महेन्द्र तिवारी

